JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

योग दर्षन के परिप्रेक्ष्य में समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा – एक विवेचना

षोधार्थी–जोगीराज यादव
(प्राच्य अध्ययन विभाग, दर्षन षास्त्र) दे.सं.वि.वि.
निर्देषक– डॉ. कृश्णा झरे
सह–संकायाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर
स्कूल ऑफ ह्यूमेनिटिस, सोषल साइंस एण्ड फाउण्डेषन कोर्स

सारांष –

मानव जीवन की पूर्ण सफलता तथा सर्वांगीण विकास में 'स्वास्थ्य' का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। स्वस्थ षरीर व जीवन के कारण मनुश्य का मानसिक, भावनात्मक, चारित्रिक, नैतिक एवं सामाजिक विकास होता है। जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं बचता जहां संतुलित एवं समग्र स्वास्थ्य की आवष्यकता न हो। समग्र स्वास्थ्य का अर्थ है षरीर, प्राण, मन और आत्मा के स्तर तक सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं अस्तित्व में आरोग्यता का होना। स्वास्थ्य और जीवन इस तरह घुले–मिले हैं कि जीवन के हर आयाम वह चाहे षारीरिक हो, मानसिक हो अथवा सामाजिक तंत्र, लौकिक हो एवं अलौकिक सभी जगह समग्र स्वास्थ्य की आवष्यकता होती है। किसी भी व्यक्ति, समाज या राश्ट्र का उच्चतर वैभव समग्र स्वास्थ्य का प्रतिफल है। सर्वांगीण विकास समग्र स्वास्थ्य के बिना सम्भव नहीं है। योग दर्षन जीवन के रूपान्तरण एवं विकास का ऋशि प्रणीत उच्चतम विज्ञान है। समग्र स्वास्थ्य की दृश्टि से इसमें षरीर, प्राण, चित्त आदि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के आयामों को स्वस्थ तथा विकसित बनाने वाला ज्ञान विज्ञान और उसकी व्यावहारिक तकनीकें समाहित है। आधुनिक समय में समग्र स्वास्थ्य की उपलब्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने में योग दर्षन की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।[1]

(1) योग की परिभाशा –

योग षब्द की उत्पत्ति 'यज' धातु से हुई है। जीवात्मा परमात्मा का परस्पर समन्वय, एकीकरण ही इसका मूल अर्थ रहा है। योगदर्षन महर्शि पतंजलि द्वारा रचित एक प्रमुख भारतीय दर्षन है। योग मुख्यतः एक समग्र जीवन पद्धति है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि आदि अश्टांग योग के अभ्यास से व्यक्ति के सामाजिक तथा व्यक्तिगत आचरण में सुधार आता है। यह आत्मसाक्षात्कार व ईष्वर साक्षात्कार का दर्षन है। विभिन्न वैज्ञानिक षोधों के उपरांत इसके कई चिकित्सकीय लाभ सामने आए हैं, तभी से योग को एक समग्र स्वास्थ्य चिकित्सा पद्धति की प्राप्ति के साधन के रूप में पूरी दुनिया में मान्यता मिलने लगी है। संयुक्त राश्ट्रसंघ के द्वारा वर्श–2015 से हर वर्श 21 जून को अंतर्राश्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाए जाने की घोशणा की जो वस्तुतः योग की समग्रता का ही सम्मान है।

(2) योग दर्षन की समग्रता –

योग दर्षन जीवन विद्या का विलक्षण ग्रन्थ है। योग विद्या के क्रियान्यवन में जाति, लिंग, भाशा, क्षेत्र, सम्प्रदाय का कोई प्रतिबन्ध नहीं हैं। योग ईष्वर परायण और निरीष्वरवादी दोनों ही के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। महर्शि पतंजलि ने 'अथ योगानुषासनम्'[2] के सूत्र–सिद्धांत द्वारा ग्रंथ का षुभारम्भ करके मानव जीवन के अनुषासन को स्वीकारते हैं। योग अपरा प्रकृति एवं परा प्रकृति के संयोग का समग्र विज्ञान है।[3] योगदर्षन अध्यात्म की दृढ़ आधारषिला पर अवलम्बित होने के कारण योग के सूत्रों में प्रकाष एवं सौन्दर्य का अद्भूत सम्मिश्रण सन्निहित है। योग दर्षन ने तत्वमीमांसा की अपेक्षा मोक्ष प्राप्ति को अधिक महत्व दिया है। योग दर्षन इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए जीवन में समग्र स्वास्थ्य को आवष्यक मानते है। जिसके लिए उन्होंने अश्टांग योग दिया है। पं. श्रीराम षर्मा आचार्य के अनुसार– 'योग षरीर, मन व आत्मा तीनों के परिश्कार पर केंद्रित है।' जीवन तन और मन के जोड़ से कुछ अधिक है। इसमें अन्तर्भावना, अन्तर्चेतना एवं अन्तरात्मा जैसे अदृष्य आयाम भी हैं। षारीरिक अंगों के गठजोड़ को बायोलोजी पर आधारित मेडिकल साइंस से समझा जा सकता है। मन की चेतन–अचेतन परतें मनोविज्ञान द्वारा पढ़ ली जाती है, परन्तु अतिचेतन, प्रारब्ध और संस्कारों जैसी गहरी बातें तो अध्यात्म विद्या से ही जानी, समझी जा सकती है। आध्यात्मिक दृश्टि से ही जीवन की यथार्थता और सम्पूर्णता पता चलती है। इस संपूर्णता के बलबूते ही समग्र निदान का विधान सम्भव है। यह तत्वज्ञान एवं तत्वानुभूति का विज्ञान है। योग की मूल धारा आध्यात्मिक है। प्रचलित अर्थ में धर्म व धार्मिक प्रक्रिया से भी योग का कोई सम्बन्ध नहीं है। योग उस विद्या का नाम है जहाँ इन सभी षारीरिक तथा मानसिक पक्षों को बल देने के साथ ही जीवन की इहलौकिक तथा पारलौकिक सार्थकता को उजागर करने की भी क्षमता है। मन इंद्रियों के वष में हो तो भोग है और इंद्रियों का मन के परावर्ती होना योग है, प्रत्याहार है। मन का भटकाव तभी रूकता है।[4] योग की आध्यात्मिक तथा स्वास्थ्योन्नयक उपयोगिता यौगिक निदान में स्वतः सिद्ध है। योग का प्राथमिक उद्देष्य मनुश्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति की पूर्णता से कहीं अधिक चरम परम अवस्था मोक्ष उपलब्धि है; योग मात्र एक चिकित्सा प्रणाली नहीं है। यह तो योग की एक प्रक्रिया मात्र है। इसका वास्तविक उद्देष्य मानव षरीर को स्वस्थ रखते हुए, मानवीय चेतना को उर्ध्वगामी बनाना है। यही योग का महत् उद्देष्य है। षरीर को स्वस्थ रखना इसलिए आवष्यक है, क्योंकि इसी षरीर के माध्यम से उच्चतर यौगिक क्रियाओं को सम्पादित करना होता है। अतः योग रोग भगाने के लिए ही नहीं है, बल्कि चेतना की गहराई में प्रवेष कर अलौकिक मणिमुक्तक खोजने के लिए है। इस प्रक्रिया में षरीर को निरोग एवं स्वस्थ रहना तो आवष्यक है, साथ ही योग के मर्म को जानने के लिए षरीर एवं मन को स्वस्थ रखते हुए योग चिकित्सा से योग चेतना की षिखर यात्रा करनी चाहिए। रोग, भोग और योग तीनों में षरीर ही केन्द्रबिंदु बनता है और इसी के आधार पर रोग और भोग से उत्क्रांति कर योग की उपलब्धि की जा सकती है।[5] आधुनिक चिकित्सा की ही भांति योग चिकित्सा को भी विकसित किया जाता है। इस अनिवार्यता के पूर्ण होने पर ही योग चिकित्सा विज्ञान के प्रयोग एवं प्रभाव का सही ज्ञान सम्भव है। योग चिकित्सा में पहला सच सम्प्रत्यय व सिद्धान्त का इसमें सम्पूर्ण मानवीय अस्तित्व की संरचना का अध्ययन करना जरूरी है। षरीर की वैज्ञानिक एवं यौगिक संरचना, चित्त की संरचना आदि, इसकी क्रिया विधि में प्राण व उसके प्रभाव का विषद ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है, क्योंकि योग विज्ञान यह मानता है कि प्राण में होने वाली न्यूनताओं एवं विकृतियों के कारण ही संक्रमण एवं विकार जन्म लेते हैं; निदान पद्धति में भी आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों एवं योग का अंतर्ज्ञान का महत्व है, क्योंकि योग विज्ञान यह मानता है कि रोग दो तरह के होते हैं– 1. परिस्थिति जन्य एवं 2. प्रारब्ध जन्य। यद्यपि दोनों ही प्रकार के रोगों में प्राण–प्रवाह अवरूद्ध या बाधित होता है, परन्तु इनकी चिकित्सा विधि में थोड़ा भेद अवष्य है। योग विज्ञान यह प्रमाणित करता है कि हमारे व्यक्तित्व के

सभी अवयव एवं आयाम प्राणसूत्र से जुड़े हैं। यह प्राण अपने भिन्न–भिन्न रूपों में हमारे षरीर में प्रवाहित है। इस प्राण को ही आधुनिक विज्ञानी जीवनीषक्ति, प्रतिरोधक क्षमता, जैव विद्युत, वैद्युत चुंबकीय ऊर्जा जैसे विविध नामों से पुकारते हैं। यद्यपि यह और कुछ नहीं प्राण के विविध रूप हैं। जिन्होंने इस प्राण को थोड़े–बहुत अंषों में पहचाना, उन्होंने अपनी पहचान के अनुरूप प्राणिक हीलिंग एवं रेकी जैसे विधियां भी विकसित की परन्तु योग में प्राण की पहचान अपेक्षाकृत समग्ररूप में है। और यह मान्यता है कि यदि प्राण सूत्र टूट जाये तो हमारा स्थूल एवं सूक्ष्म व्यक्तित्व अलग हो जायेगा। इसी को सांसारिक जीवन में मृत्यु कहा जाता है। जीवन स्वस्थ एवं दीर्घ हो, इसलिए प्राण संजीवनी का संरक्षण एवं संवर्धन जरूरी है।

(3) योग का तत्व दर्षन एवं अंग –

योग दर्षन ने सांख्य दर्षन के तत्वमीमांसा को स्वीकार किया है। योग दर्षन ने भी सांख्य दर्षन की तरह ही पच्चीस तत्व माने है, परन्तु सांख्य दर्षन की अपेक्षा एक छब्बीसवां तत्व 'ईष्वर' या 'पुरूशविषेश' अतिरिक्त माना है। इसलिए योग दर्षन को 'सेष्वर सांख्य' भी कहा जाता है। महर्शि पतंजलि के अनुसार चित्त (मन) की वृत्तियों को रोकना ही योग है।[6] 'चित्तवृत्ति निरोधः' के लिए अश्टांग योग का वर्णन किया गया है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि ये सभी अश्टांग योग के अंग है। इन अश्टांगों में प्रथम दो (यम, नियम) मुख्यतः आचार सम्बन्धी अभ्यास है, ये दोनों योगाड़.ग मनुश्य को व्यवहार में निपुण बनाते हैं, अगले दो अंग (आसन, प्राणायाम) मानव षरीर को भौतिक दृश्टि से योगाभ्यास करने योग्य बनाते हैं। पाँचवा अंग प्रत्याहार है, जो इन्द्रिय–निग्रह का उपाय है और उसके बाद की प्रक्रियाएँ (धारणा, ध्यान, समाधि) पूर्णरूप से मानसिक व आध्यात्मिक नियमन की साधनायें है। महर्शि पतंजलि यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार को बहिरंग योग कहते है और धारणा, ध्यान, समाधि को अन्तरंग योग कहते हैं।[7] योगदर्षन का प्रत्येक सूत्र सैद्धान्तिक रूप में समग्र स्वास्थ्य की दृढ़ आधारषिला पर अवलम्बित है।

(1) व्यवहार के परिश्कार के लिए यम जिसमें सदाचार के सूत्र है।
(2) चिंतन के बिखराव–भटकाव के नियमन के लिए नियम हैं।
(3) षरीर को दृढ़ निरोग करने के लिए आसन हैं।
(4) प्राण के परिमार्जन के लिए प्राणायाम।
(5) चिंतन चेतना के साथ प्राण–प्रवाह को अंतर्लीन करने के लिए प्रत्याहार हैं।
(6) तत्व को, सत्व को एवं सत्य को धारण करने की षक्ति प्राप्त करने के लिए धारणा हैं।
(7) धारणाओं में निमग्न होने के लिए ध्यान हैं। एवं
(8) ध्यान के द्वार से प्रवेष कर सत्य में स्वयं के स्वरूप में प्रतिश्ठित होने के लिए समाधि है।''[8]

योग–व्यवहार पर, षरीर–आरोग्य पर, प्राण की प्रक्रियाओं पर, मन की सूक्ष्म संवेदनाओं पर, संस्कारों, कर्म–समुदाय पर, यहाँ तक कि प्रकृति एवं सृश्टि की व्यापकता में इसके प्रभावों एवं परिणामों को परखा गया है। योगविद्या व्यवहार विचार एवं संस्कारों को क्रम से परिषुद्ध कर कैवल्य बोध देती है, स्वयं के स्वरूप में प्रतिश्ठा प्रदान करती है।[9] योगदर्षन व्याधि निवारण एवं समग्र स्वास्थ्य संरक्षण का एक महत्वपूर्ण अंग व सिद्ध साधन है, क्योंकि समग्र व्याधि का मूल कारण मानसिक क्लेष को माना गया है, जब व्यक्ति का मन अस्वस्थ होता है तब उसका षरीर भी विभिन्न प्रकार की व्याधियों का घर बन जाता है। संसार के अन्दर जितने भी कश्ट है, उसका मूल कारण चित्त का अव्यवस्थित होना ही माना गया है। इसीलिए चित्त के व्यापार को रोकने के लिए महर्शि पतंजलि ने चित्तवृत्ति निरोध की बात कही है।

योगदर्षन के अनुसार–चित्त की पांच अवस्थायें हैं जो इस प्रकार हैं– (1) मूढ़ (2) क्षिप्त (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र (5) निरूद्ध।

(1) चित्त की मूढ़ावस्था– जो चित्त किसी इन्द्रिय विशय में मग्न होने के कारण तत्व चिन्तन करने में आयोग्य हो जाता है वह चित्त की मूढ़ावस्था है।[10] यह चित्त की तमः प्रधान अवस्था है। इस अवस्था में रजस और सत्व दबे रहते हैं तमोगुण उद्रेक से चित्त इस मूढ़ावस्था को प्राप्त होता है। चित्त की इस अवस्था में मनुश्य को निद्रा, तन्द्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, भ्रम और विशयों के ज्ञान की अस्पश्ट प्राप्ति का अनुभव होता है। इस अवस्था में व्यक्ति ठीक प्रकार सोच–विचार नहीं सकता, उसकी बौद्धिक षक्तियों पर आवरण पड़ा रहता है। इस अवस्था में मनुश्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य, अनैष्वर्य में होती है और व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त होता है। इस अवस्था में व्यक्ति विवेकषून्य होने के कारण उचित–अनुचित का विचार नहीं कर पाता है। वह नहीं समझ पाता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह के वषीभूत होकर विपरीत और अनुचित कार्यों में प्रवृत्त रहता है। यह अवस्था राक्षसों, पिषाचों तथा मादक द्रव्य सेवन किये हुए उन्मत्त और नींच मनुश्यों की होती है।[11] वह व्यक्ति मानसिक रूप से रोगी है। जिसका उचित उपचार अपेक्षित है।

(2) क्षिप्तावस्था– यह चित्त की रजोगुण प्रधान अवस्था है, जिसमें सत्व और रजस दबे रहते हैं। इस अवस्था वाला चित्त अत्यंत चंचल होता है जो निरंतर विशयों के पीछे भागता रहता है। यह बहिर्मुख होता है इसलिए निरन्तर बाह्य विशयों में प्रवृत्त होता रहता है। इस अवस्था में चित्त विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सब ओर दौड़ता रहता है, वह निरन्तर अषांत और अस्थिर बना रहता है। ऐसे चित्त वाला व्यक्ति कोई भी कार्य ठीक प्रकार संपादित नहीं कर सकता। इस अवस्था में मानसिक क्रियाओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता। वह पूर्णतया सांसारिक विशयों में लिप्त रहता है। निरन्तर सुखी–दुखी, चिन्तित और षोकपूर्ण एवं राग–द्वेश युक्त रहता है। उसमें राजसी वृत्तियों का उदय होता है। इसमें धर्म, अधर्म, वैराग्य, अवैराग्य, ज्ञान–अज्ञान तथा ऐष्वर्य–अनैष्वर्य की तरफ प्रवृत्ति होती है। इस अवस्था में प्रधानता तो रजोगुण की ही होती है। परन्तु सत्व और तमस् भी गौण रूप से उपस्थित होते हैं। इसमें चित्त स्वभावतः अत्यंत अस्थिर होता है। जिस चित्त में अतीन्द्रिय विशयों की विचारणा के लिए जितनी स्थिरता और बौद्धिक षक्ति की आवष्यकता है। उतनी नहीं होती है चित्त की यह अवस्था सामान्य सांसारिक मनुश्यों की होती है। जो यौगिक दृश्टि से मानसिक स्वस्थता का प्रतीक नहीं है, यह मानसिक स्वस्थता से बहुत दूर है।

(3) विक्षिप्तावस्था– विक्षिप्त का अर्थ है– जो क्षिप्त से विषिश्ट हो। जिस अवस्था में चित्त कभी–कभी स्थिर हो जाता है और कभी–कभी चंचल हो जाता है, वह विक्षिप्त है।[12] इस अवस्था में सत्व गुण की प्रधानता रहती है तथा अन्य दोनों गुण रजस और तमस् दबे रहते है। रजोगुण की प्रबलता के कारण क्षिप्त चित्त कभी स्थिर नहीं होता, वह सदा चंचल बना रहता है, परन्तु विक्षिप्त अवस्थायें सत्व की अधिकता के कारण स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।[13] इसमें व्यक्ति ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐंष्वर्य की तरफ प्रवृत्त होता है। इस अवस्था में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि गौण हो जाते हैं और सांसारिक विशयों के प्रति रूचि नहीं रहती। इस अवस्था में व्यक्ति निश्काम कर्म में प्रवृत्त होता है। किन्तु चित्त की स्थिरता स्थायी नहीं रहती है। इस चित्त की अवस्था वाला मनुश्य सुखी, प्रसन्न, उत्साही, धैर्यवान, दानी, श्रद्धालू, दयावान, वीर्यवान, चैतन्य, क्षमाषील और उच्च विचार आदि गुण वाला होता है। यह अवस्था महान पुरूशों, जिज्ञासुओं की होती है।[14] इस अवस्था में पहुँचा व्यक्ति अधिकांष कसौटियों पर सर्वथा सामान्य एवं मानसिक रूप से स्वस्थ ही माना जाएगा किन्तु मानवीय अस्तित्व पर आत्यन्तिक रूप से विचार करने वाली यौगिक दृश्टि में समाधि से दूर है।

(4) एकाग्र अवस्था– जिस चित्त की एकाग्रता या अवलंबन एक है उसे एकाग्रचित्त कहते है।[15] सूत्रकार ने कहा है– एक वृत्ति निवृत्त होने पर यदि उसके बाद ठीक तदनुरूप वृत्तियों का प्रवाह चलता रहे तो ऐसे चित्त को एकाग्र चित्त कहते हैं।[16] चित्त की अवस्था में चित्त विषुद्ध सत्व रूप हो जाता है, रजस् तथा तमस् तो वृत्ति मात्र ही रह जाते हैं। अतः रजोगुण एवं तमोगुण के विक्षेप रूक जाने से वृत्तियों का प्रवाह एक ही दिषा में बना रहता है तथा सतोगुण की प्रधानता के कारण चित्त निर्मल स्फटिक मणि के समान पवित्र और स्थिर हो जाता है उस अवस्था को एकाग्र अवस्था कहते हैं।[17] इस अवस्था में वृत्ति विषेश के सिवाय अन्य वृत्तियों का निरोध हो जाता है। वह अवस्था योगियों की होती है।[18]

(5) निरूद्धावस्था– यह षेश अवस्था है। निरोध समाधि अभ्यास द्वारा जब चित्त का चिरस्थायी निरोध वषीकृत हो जाता है, तब चित्त की उस भूमि को निरोध भूमि कहते हैं।[19] इस अवस्था में चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध है। चित्त में स्थिरता पूर्ण रूप से स्थापित हो जाती है। एकाग्रावस्था में साधक को आत्मा और चित्त के भेद का साक्षात्कार हो जाता है, इस अवस्था को विवेक ख्याति कहते हैं यह भी चित्त की एक वृत्ति है, यद्यपि यह उच्चतम सात्विक वृत्ति है। अतः उसका भी निरोध आवष्यक है इस उच्चतम सात्विक वृत्ति का निरोध वैराग्य द्वारा किया जाता है। इस वृत्ति का निरोध हो जाने पर साधक सम्पूर्ण चित्त वृत्ति निरोध की अवस्था में पहुँच जाता है। इसमें चित्त आत्मस्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसमें अविद्यादि पंचक्लेष नश्ट हो जाते हैं। सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है, इसको असंप्रज्ञात समाधि भी कहते हैं।[20] इन पांच अवस्थाओं में प्रथम तीन योग(समाधि) के लिए नितांत अनुपयोगी हैं परन्तु अंतिम दो अवस्थाओं में योग का उदय होता है।[21] इसमें सत्व की प्रधानता रहती है, अतः इसमें कोई रोग उत्पन्न नहीं होता। विविध मानसिक रोग मन की मूढ़ व क्षिप्त अवस्थाओं में उद्भूत होते है। क्योंकि मानसिक–अस्वस्था का प्रभाव बाहरी षरीर पर पड़ता है इससे होने वाले रोगों को मनोकायिक रोग कहा जाता है जो कि मन के विकारग्रस्त होने पर षरीर में उसके लक्षण प्रकट होने लगते है। इस प्रकार से जनित रोगों को मनोकायिक रोगों की श्रेणी में रखा जाता है। अतः जिसका मानसिक व्यापार मर्यादित होता है वे कभी षोक–मोह तथा षारीरिक रोगों से अभिभूत नहीं होते। यही कारण है योगी का जीवन अरोग्यता पूर्ण व दीर्घजीवी जीवन होता है। अश्टांग योग के पालन से चित्त का विकार नश्ट हो जाता है। आत्मा अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान पाती है। आत्मा को प्रकृति, देह, मन, इन्द्रियों से भिन्न होने पर जो ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यही आत्मा के मोक्ष की अवस्था है।[22] मानवी–काया, मानवी मतिश्क का प्रतिबिम्ब कही जा सकती है। चिन्तन, मनन एवं भावनाओं के अनुरूप ही कायिक क्रिया–कलापों का निर्धारण होता है। भाव–संवेदनाओं और विचारणाओं की उत्कृश्टता–निकृश्टता के आधार पर ही हमारी आन्तरिक प्रणाली एवं प्राणऊर्जा का निर्माण होता है। विचार और भावनाओं की अदृष्य षक्ति का हमारे भारतीय षास्त्रों में गहन अध्ययन हुआ है और यह निश्कर्श निकाला गया है कि स्थूल रूप से मनुश्य का जैसा भी कुछ जीवन है, उसकी भावनाओं का ही परिणाम है, भले ही उसका सम्बन्ध इस जीवन से न हो, पर कोई भी कश्ट या दुःख, रोग–षोक या बिमारी हमारे पूर्वकृत कर्मों और उससे पूर्व पैदा हुए मन के दुर्भावों का ही प्रतिफल है।

योग दर्षन में योगाभ्यास की व्याख्या मोक्ष को अपनाने के उद्देष्य से ही की है। योग की सार्थकता को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार करता है। समग्र स्वास्थ्य के लिए योगाभ्यास आवष्यक है। योग दर्षन इसी के लिए प्रेरित करता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए। योगाभ्यास से न केवल हमारा षरीर बलिश्ठ होता है, अपितु विभिन्न प्रकार की षारीरिक और मानसिक व्याधियों से भी बचाया जा सकता है। जो व्यक्ति जीवन में व्यक्तिगत, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता है उसे योगानुगामी होना चाहिए।

निश्कर्श–

अस्वस्थता यौगिक जीवनषैली की अवहेलना के कारण ही होती है। यदि यौगिक जीवनषैली नियमित रूप से अपनायी जाती रहे तो परिस्थितिजन्य बीमारियों से पूरी तरह छुटकारा पाया जा सकना सम्भव है। यौगिक जीवनषैली बाहरी एवं आंतरिक जीवन में सामंजस्य बनाने का कारगर उपाय है। सामंजस्य सही हो तो जीवन में कुषलता, सफलता एवं क्षमता स्वयं ही विकसित हो जाती है। प्राण प्रवाह भी स्वयं ही अपने सम्पूर्ण परिपथ में प्रवाहित होता है। यौगिक जीवनषैली कारगर निदान हेतु ही नहीं, वरन् समग्र स्वास्थ्य के लिए भी एक समग्र चिकित्सकीय दृश्टिकोण है खाना–पीना, सोना–जागना, चिंतन–चरित्र, व्यवहार आदि सभी इसमें समाहित हैं योग को समग्र स्वास्थ्य का कारगर सूत्र कहा जाये तो अतिषयोक्ति न होगी।

संदर्भ सूची –

1. श्रीमाली, डॉ. मंदाकिनी (प्रथम संस्करण–2001),प्रज्ञापुरुष का समग्र दर्शन, अखण्ड ज्योति संस्थान : मथुरा, पृ.–156
2. पण्ड्या डॉ. प्रणव(1993),अखण्ड ज्योति, प्रज्ञायोग की सर्वसुगम साधना, वर्श–56, अंक–08, पृ.–18
3. पण्ड्या, डॉ. प्रणव(2009)अखण्ड ज्योति, जुलाई, स्वयं में प्रतिश्ठित कर अनुषासित करता है योग, पृ. 32
4. पण्डया, डॉ. प्रणव(2015),अखण्ड ज्योति, फरवरी, भोग की उत्क्रांति है योग, वर्श 79, अंक 02, पृ. 39
5. वही
6. पण्ड्या, डॉ. प्रणव(2009)अखण्ड ज्योति, जुलाई, स्वयं में प्रतिश्ठित कर अनुषासित करता है योग, पृ. 32
7. आरण्य, हरिषचन्द्र, पातंजलसूत्र योग दर्षन, पृ.– 04
8. डॉ. षांतिप्रकाष आत्रेय, योग मनोविज्ञान, पृ.– 131
9. आरण्य श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्षन, पृ.–04
10. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्षन, पृ.–264
11. डॉ. षांतिप्रकाष आत्रेय, योग मनोविज्ञान, पृ.– 133
12. आरण्य श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्षन, पृ.–04
13. पा. यो. सू.–3/12
14. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्षन, पृ.–294
15. डॉ. हरेद्रप्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्षन की रूपरेखा, पृ.–336
16. आरण्य, श्रीमत स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्षन, पृ.–05
17. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्षन, पृ.–294
18. वही
19. वही
20. वही, पृ. 34
21. वैषेशिक दर्षन–1/1/6
22. पण्ड्या, डॉ. प्रणव(2010)अखण्ड ज्योति, दिसंबर, वेदान्त बनाम आधुनिक मनोविज्ञान, वर्श 74, अंक 12, पृ.15